

श्रीमद्भागवत स्कन्ध 8 अध्याय 5: देवताओं की प्रार्थना

14 September 2026



शाप से उनका तेज छिन गया और युद्ध में उनका बल टूट गया — देवता ब्रह्मा के पीछे-पीछे माया के अन्धकार से परे एक तट तक पहुँचते हैं, और वहाँ स्वयं स्रष्टा उस भगवान की स्तुति उठाता है जिन्हें उसने कभी देखा नहीं पर सदा जाना है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवत विज्ञम में आपका पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिमयी यात्रा। गजेन्द्र की प्रिय कथा पूर्ण करके श्रीशुकदेव गोस्वामी अब मन्वन्तरों का वृत्तान्त पुनः आरम्भ करते हैं और समस्त शास्त्रों की एक भव्यतम लीला — क्षीरसागर के मन्थन — की भूमिका रचते हैं। आठवें स्कन्ध का यह पाँचवाँ अध्याय बताता है कि किस प्रकार देवता, एक सागे के शाप से अपनी शक्ति खोकर और युद्ध में असुरों से पराजित होकर, पहले ब्रह्मा की और फिर उनके मार्गदर्शन में स्वयं परम भगवान की शरण गए। इसका हृदय वह भव्य स्तुति है जो ब्रह्मा उस महासागर के तट पर करते हैं — उस भगवान की स्तुति जो समस्त अन्धकार से परे विराजते हैं, जिन तक स्वयं स्रष्टा भी केवल श्रद्धा से पहुँच सकता है।

अध्याय की जानकारी

- ग्रन्थ: श्रीमद्भागवत महापुराण

- स्कन्ध: 8 (आठवाँ स्कन्ध)
- अध्याय: 5 (पंचम अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: देवताओं की ब्रह्मा के माध्यम से भगवान से प्रार्थना
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित से कहते हुए — स्तुति स्वयं ब्रह्मा द्वारा
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: मेरु पर्वत पर ब्रह्मा का दरबार, तथा माया के अन्धकार से परे दिव्य तट
- केन्द्रीय विषय: रैवत और चाक्षुष मन्वन्तरों का वर्णन; दुर्वासा के शाप से नष्ट और असुरों से पराजित देवता ब्रह्मा की शरण लेते हैं, जो उन्हें भगवान के पास ले जाकर एक महान स्तुति करते हैं
- प्रमुख श्लोक श्रेणी: स्कन्ध 8, अध्याय 5, श्लोक 1–50
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

चतुर्थ अध्याय में भगवान ने गजेन्द्र का उद्धार पूर्ण किया, गजराज और ग्राह के पूर्वजन्म प्रकट किए, और अपने शाश्वत धाम को प्रस्थान किया, इस कथा को सुनने वालों को आशीष का वचन देते हुए। उस पवित्र वृत्तान्त को कह चुकने के पश्चात् श्रीशुकदेव अब मन्वन्तरों के महान ढाँचे की ओर लौटते हैं, पाँचवें और छठे मनुओं का वर्णन करते हैं और छठे के युग में भगवान के अजित रूप में अवतार का — उस अवतार का जिससे क्षीरसागर का मन्थन होगा। यह सीधे राजा परीक्षित की उसी कथा को सुनने की उत्सुक याचना में ले जाता है।

रैवत और चाक्षुष के युग

श्रीशुकदेव मन्वन्तरों का वृत्तान्त आगे बढ़ाते हैं। पाँचवें मनु रैवत थे, चौथे मनु तामस के भाई। उनके युग में विभु इन्द्र थे, भूतलय आदि देवता थे, और हिरण्यरोमा, वेदशिरा, ऊर्ध्वबाहु आदि सात ऋषि थे। इस काल में स्वयं भगवान ने अंशावतार के रूप में वैकुण्ठ नाम से जन्म लिया, सागे शुभ्र और उनकी पत्नी विकुण्ठा से — और लक्ष्मी देवी के अनुरोध पर तथा उन्हें प्रसन्न करने के लिए समस्त लोकों द्वारा वन्दित वैकुण्ठ-धाम को प्रकट किया।

छठे मनु चाक्षुष थे, चक्षु के पुत्र, जिनके पुत्र पुरु, पुरुष, सुद्युम्न आदि थे। उस युग के इन्द्र मन्त्रद्रुम थे, आप्य देवता थे, और हविष्मान, विरक आदि ऋषि थे। इस मन्वन्तर में विश्व के रक्षक भगवान अजित रूप में प्रकट हुए, वैराज के पुत्र, उनकी पत्नी सम्भूति से — और यही अजित थे जिन्होंने क्षीरसागर के मन्थन से देवताओं को अमृत उपलब्ध कराया, और दिव्य कच्छप रूप में जल में घूमते मन्दराचल को धारण किया।



श्रीशुकदेव पाँचवें मनु रैवत और छठे मनु चाक्षुष के युगों का वर्णन करते हैं, और बताते हैं कि किस प्रकार चाक्षुष के युग में भगवान अजित रूप में अवतरित हुए, जो क्षीरसागर का मन्थन करेंगे (श्लोक 1-10)।

श्रीशुकदेव पाँचवें मनु रैवत और छठे मनु चाक्षुष के युगों का वर्णन करते हैं, और यह कि चाक्षुष के युग में भगवान अजित रूप में अवतरित हुए, जो क्षीरसागर का मन्थन करेंगे (श्लोक 1-10)।

परीक्षित की उत्सुक जिज्ञासा

सागर-मन्थन का उल्लेख सुनते ही राजा परीक्षित का हृदय द्रवित हो उठता है। वह श्रीशुकदेव से उस परम अद्भुत लीला का पूर्ण वर्णन माँगते हैं: क्षीरसागर का मन्थन किस प्रकार और किसलिए हुआ, भगवान ने कच्छप रूप में मन्दराचल को कैसे धारण किया, देवताओं को अमृत कैसे मिला, और उस अवसर पर और क्या-क्या प्रकट हुआ। उनका मन, जो संसार के दुःखों से चिरकाल से पीड़ित है, भगवान की महिमा सुनने से तृप्त ही नहीं होता — जितना सुनता है, उतना ही अधिक सुनने की लालसा बढ़ती है। इस जिज्ञासा का स्वागत करते हुए सर्वज्ञ श्रीशुकदेव उस महान कथा को कहना आरम्भ करते हैं।

देवताओं का तेज छिन जाता है

श्रीशुकदेव विपत्ति के एक काल से दृश्य आरम्भ करते हैं। एक घोर युद्ध में देवता असुरों के तीक्ष्ण अस्त्रों से बड़ी संख्या में मारे गए और फिर उठ न सके।

श्रीशुक उवाच

यदा युद्धेऽसुरैर्देवा बध्यमानाः शितायुधैः ।

गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन्म भूरिशः ॥ १५ ॥

श्रीशुक उवाच यदा युद्धेऽसुरैर्देवा बध्यमानाः शितायुधैः गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन्म भूरिशः

अर्थ: श्रीशुकदेव ने कहा — जब युद्ध में असुरों के तीक्ष्ण अस्त्रों से आहत होकर देवता बड़ी संख्या में प्राणहीन होकर गिर पड़े और फिर उठ न सके... (स्कन्ध 8, अध्याय 5, श्लोक 15)

इस पराजय के पीछे एक गहरा कारण था। सागे दुर्वासा के शाप के कारण — जो तब क्रुद्ध हुए थे जब इन्द्र ने अपने अहंकार में उनकी दी हुई माला का अनादर किया था — इन्द्र सहित तीनों लोक अपने तेज से रहित हो गए थे, और समस्त यज्ञ तथा सत्कर्म लुप्त हो गए थे। धर्म से मिलने वाले बल से वंचित होकर स्वर्ग स्वयं दरिद्र हो गया जबकि असुर फलते-फूलते रहे।



ऋषि दुर्वासा के शाप से और युद्ध में पराजित होकर देवता तथा तीनों लोक अपने तेज से वंचित हो जाते हैं, उनके यज्ञ क्षीण हो जाते हैं, जबकि असुर बलवान होते जाते हैं (श्लोक 15-16)।

सागे दुर्वासा के शाप से शापित और युद्ध में पराजित होकर देवता तथा तीनों लोक अपने तेज से रहित हो जाते हैं, उनके यज्ञ लुप्त हो जाते हैं, जबकि असुर बलवान होते हैं (श्लोक 15-16)।

देवता ब्रह्मा की शरण लेते हैं

अपनी दुर्दशा देखकर इन्द्र, वरुण और अन्य देवताओं ने आपस में विचार किया, पर किसी निष्कर्ष पर न पहुँच सके। अन्ततः वे सब मेरु पर्वत के शिखर पर ब्रह्मा के दरबार में गए और स्रष्टा के समक्ष सम्पूर्ण विषय विनयपूर्वक निवेदित किया। देवताओं को बल और तेज से रहित, लोकों को मंगल से शून्य, और असुरों को फलते-फूलते देखकर ब्रह्मा ने अपना मन परम पुरुष के गहन चिन्तन में स्थिर किया, और फिर प्रसन्न मुख से देवताओं को आशा के वचन कहे।

उन्होंने स्मरण कराया कि कोई भी प्राणी भगवान से स्वतन्त्र नहीं। शिव, स्वयं ब्रह्मा, देवता, असुर, मनुष्य, पशु, वनस्पति और सूक्ष्मतम जीव — सब परम भगवान से ही निकले हैं, चाहे उनके प्रथम अभिव्यक्ति विराट पुरुष से, या उनके अंश ब्रह्मा से, या ब्रह्मा के अपने सृष्टिकर्ता प्रतिनिधियों से।

अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो
मनुष्यतिर्यग्द्रुमधर्मजातयः ।
यस्यावतारांशकलाविसर्जिता
ब्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥ २१ ॥

अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो मनुष्यतिर्यग्द्रुमधर्मजातयः यस्यावतारांशकलाविसर्जिता ब्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम्

अर्थ: मैं, शिव, आप सब, और असुर भी, तथा मनुष्य, पशु, वृक्ष और स्वेदज जीव — सब उन्हीं के अवतारों, अंशों और अंशों के अंशों द्वारा प्रकट किए गए हैं। इसलिए आओ, हम सब उस अविनाशी भगवान की शरण लें। (स्कन्ध 8, अध्याय 5, श्लोक 21)

ब्रह्मा ने समझाया कि भगवान के लिए न कोई वध्य है न पक्षपात से रक्षणीय, न कोई पक्ष प्रिय है न उपेक्ष्य; फिर भी विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए वे बारी-बारी से रजस्, सत्त्व और तमस् के गुण धारण करते हैं। और अभी, ब्रह्मा ने कहा, वही समय है जब भगवान समस्त प्राणियों के कल्याण हेतु सत्त्वगुण को धारण करते हैं। वे देवताओं के, अपने जनों के हितैषी हैं — इसलिए आओ, हम उन विश्व-गुरु की शरण लें।



मेरु पर्वत के शिखर पर ब्रह्मा परम भगवान का ध्यान करते हैं और देवताओं को परामर्श देते हैं कि समस्त प्राणी उन्हीं से उत्पन्न हुए हैं और अब उन्हें एकमात्र उन्हीं की शरण लेनी चाहिए (श्लोक 17-23)।

मेरु पर्वत के शिखर पर ब्रह्मा परम भगवान का चिन्तन करते हैं और एकत्र देवताओं को परामर्श देते हैं कि सब प्राणी उन्हीं से आए हैं और अब उन्हें केवल उन्हीं की शरण लेनी चाहिए (श्लोक 17-23)।

अन्धकार से परे तट पर ब्रह्मा को स्तुति

इस प्रकार देवताओं को प्रोत्साहित करके ब्रह्मा उन्हें भगवान अजित के धाम तक ले गए, जो माया के अन्धकार से परे है। वहाँ पूर्णतः एकाग्र मन से ब्रह्मा ने वेदों की पवित्र भाषा में एक भव्य स्तुति की, भगवान को प्रसन्न करने के लिए — उन भगवान को जिनके वास्तविक स्वरूप का उन्होंने साक्षात् अनुभव नहीं किया था, पर जिनके विषय में वे वैदिक शास्त्रों से चिरकाल से सुनते आए थे (श्लोक 25)।

ब्रह्मा अपनी स्तुति का आरम्भ भगवान को उस निर्विकार, नित्य सत्य के रूप में सम्बोधित करके करते हैं — किसी दृश्य रूप की ओर संकेत नहीं, अपितु स्वयं अस्तित्व के मूल आधार के रूप में, जो हर प्राणी के हृदय में विराजमान हैं और तर्क तथा वाणी, दोनों की पहुँच से परे हैं।

श्रीब्रह्मोवाच
अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यं
गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् ।
मनोऽग्रयानं वचसानिरुक्तं
नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥ २६ ॥

*śrī-brahmovāca avikriyaṁ satyam anantam ādyaṁ guhā-śayaṁ niṣkalam apratarkyam
mano-'grayānaṁ vacasāniruktaṁ namāmahe deva-varaṁ vareṇyam*

अर्थ: ब्रह्मा ने आरम्भ किया — हम आपको नमन करते हैं, जो निर्विकार और अनादि सत्य हैं, हर प्राणी के हृदय में निवास करने वाले, समस्त भौतिक गुणों से रहित, तर्क की पहुँच से परे, मन से भी आगे दौड़ने वाले, और जिन्हें वर्णन करने का हर प्रयास शब्दों को हरा देता है — जो पूज्यों में भी परम पूज्य हैं। (स्कन्ध 8, अध्याय 5, श्लोक 26)

स्तुति आगे बढ़ते हुए ब्रह्मा उसी भगवान का वर्णन जन्म-मृत्यु के चक्र की उस मौन धुरी के रूप में करते हैं, पंचमहाभूत, सूर्य-चन्द्रमा तथा मानव समाज की विभिन्न व्यवस्थाओं के स्रोत के रूप में, और उस साक्षी के रूप में जो प्रकृति के तीनों गुणों का नियन्त्रण करते हुए भी उनसे अछूते रहते हैं (श्लोक 27-44)। परन्तु इस विशाल, निराकार सत्य की स्तुति करने के बाद भी ब्रह्मा वहीं नहीं रुकते।

यहीं स्तुति अपने सबसे महत्वपूर्ण मोड़ पर पहुँचती है। भगवान को मन और वाणी की पहुँच से परे कहने के बाद भी ब्रह्मा यह निष्कर्ष नहीं निकालते कि ऐसे भगवान का केवल दूर से ही चिन्तन किया जाए — समर्पित होते हुए भी वे स्वीकार करते हैं कि उन्हें अब भी भगवान को देखने की लालसा है।

स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम् ।
प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम् ॥ ४५ ॥

*sa tvaṁ no darśayātmānam asmat-karaṇa-gocaram prapannānāṁ didṛkṣūṇāṁ sasmitaṁ te
mukhāmbujam*

अर्थ: हे भगवन्, हम आपके शरणागत हैं, फिर भी हम आपको देखने के लिए लालायित हैं: अपना वही मुस्कुराता हुआ कमल-मुख हमें दिखाइए, जो हमारी आँखों और अन्य इन्द्रियों को दिखाई दे, क्योंकि हम, शरणागत होते हुए भी, आपके दर्शन की चाह रखते हैं। (स्कन्ध 8, अध्याय 5, श्लोक 45)

ब्रह्मा आगे कहते हैं कि भगवान अपनी ही इच्छा से युग-युग में विभिन्न रूप धारण करके वह कर दिखाते हैं जो और कोई नहीं कर सकता (श्लोक 46)। यही इस पूरी स्तुति का शान्त किन्तु महत्वपूर्ण मोड़ है: आरम्भ की निराकार भाषा — मन और वाणी से परे वह अपरिवर्तनीय सत्य — भक्ति का गन्तव्य नहीं, अपितु उसका आरम्भ बिन्दु है। ब्रह्मा के अपने अनुभव में, परब्रह्म का ज्ञान अन्ततः भगवान के मुस्कुराते हुए मुख को देखने की लालसा में परिणत होता है; विश्व के स्रष्टा के लिए केवल भगवान के विषय में जानना पर्याप्त नहीं — केवल भगवान के दर्शन ही उन्हें तृप्त करेंगे। यही वह लालसा है जिसका उत्तर भगवान शीघ्र ही अजित रूप में अवतरित होकर, क्षीरसागर का मन्थन करके देंगे (श्लोक 45-46)।

इसके समापन के निकट ब्रह्मा एक ऐसी शिक्षा देते हैं जो भक्ति-जीवन की आधारशिला बन गई है — कि भगवान की आराधना एक साथ सबका पोषण है, जैसे वृक्ष की जड़ को सींचना उसकी हर शाखा और पत्ती को सींचना है।

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् ।

एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥ ४९ ॥

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि

अर्थ: जैसे वृक्ष की जड़ को सींचने से उसका तना और शाखाएँ पुष्ट होती हैं, वैसे ही भगवान विष्णु की आराधना समस्त प्राणियों का और अपने स्वयं का भी पोषण है। (स्कन्ध 8, अध्याय 5, श्लोक 49)

ब्रह्मा देवताओं को स्मरण कराते हैं कि भगवान को अर्पित कर्म कभी व्यर्थ नहीं जाता, चाहे वह कितना ही छोटा हो; क्योंकि भगवान, जीव की अपनी आत्मा होने के कारण, उसके प्रिय मित्र हैं, और प्रिय मित्र को सौंपी हुई कोई वस्तु कभी नष्ट नहीं होती। अध्याय ब्रह्मा के उस अनन्त भगवान को नमस्कार से समाप्त होता है जिनकी गति दुर्ज्ञेय है — जो प्रकृति के गुणों से परे हैं और फिर भी जगत् की रक्षा के लिए अब सत्त्व में स्थित हैं (श्लोक 50)। इस प्रार्थना के अर्पित होने और भगवान की सहायता माँगे जाने के साथ, उनके प्राकट्य और आने वाले महान मन्थन का मंच तैयार हो जाता है।



माया के अन्धकार से परे देदीप्यमान तट पर ब्रह्मा और देवता अदृश्य परम भगवान की स्तुति अर्पित करते हैं, उनकी सहायता और शरण की याचना करते हुए (श्लोक 24-50)।

माया के अन्धकार से परे दिव्य तट पर ब्रह्मा और देवता अदृश्य परम भगवान की स्तुति करते हैं, उनकी सहायता और शरण माँगते हुए (श्लोक 24-50)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. अहंकार पतन को निमन्त्रण देता है। देवताओं ने स्वर्ग ही खो दिया क्योंकि इन्द्र ने अपने अहंकार में एक सन्त की भेंट का अनादर किया। उच्च पदस्थ भी अहंकार के परिणामों से सुरक्षित नहीं (श्लोक 16)।
2. समस्त प्राणी एक भगवान पर निर्भर हैं। ब्रह्मा सिखाते हैं कि देवता, असुर, मनुष्य, पशु और वनस्पति सब परम भगवान से ही निकले हैं। भगवान में अपने साझे स्रोत को पहचानना अहंकार और निराशा दोनों को मिटा देता है (श्लोक 21)।
3. जब अपनी बुद्धि विफल हो, भगवान की शरण लें। देवताओं ने विचार किया पर कोई उत्तर न मिला; केवल जब वे ब्रह्मा के माध्यम से परम भगवान की ओर मुड़े तभी मार्ग खुला। समर्पण वहीं आरम्भ होता है जहाँ आत्मनिर्भरता समाप्त होती है (श्लोक 17-23)।
4. भगवान की आराधना सबकी सेवा है। वृक्ष की जड़ सींचने के समान, विष्णु की भक्ति हर प्राणी का और अपना भी पोषण करती है। भगवान की सेवा से बढ़कर कोई पूर्ण सेवा नहीं (श्लोक 49)।
5. भगवान को अर्पित कुछ भी कभी नष्ट नहीं होता। भगवान को समर्पित छोटा-सा कर्म भी चिरस्थायी फल देता है, क्योंकि भगवान जीव के अपने प्रिय मित्र हैं। भक्ति ही एकमात्र ऐसा निवेश है जो कभी व्यर्थ नहीं जाता (श्लोक 47-48)।
6. भगवान का ज्ञान भगवान को देखने की लालसा में परिणत होता है। भगवान को मन और वाणी से परे अपरिवर्तनीय सत्य कहने के बाद भी ब्रह्मा की अपनी स्तुति उनके मुस्कुराते मुख को देखने की व्यक्तिगत याचना में बदल जाती है — भक्ति का अन्त अमूर्त ज्ञान में नहीं, सम्बन्ध में होता है (श्लोक 26, 45)।

एक भाक्तेमय चिन्तन

इस चित्र में गहरी सान्त्वना है कि स्वयं विश्व के स्रष्टा ब्रह्मा उस महासागर के तट पर खड़े होकर एक ऐसे भगवान की प्रार्थना करते हैं जिन्हें वे देख नहीं सकते। यदि स्वयं ब्रह्मा भी परम भगवान के पास दृष्टि से नहीं अपितु श्रद्धा और श्रवण से जाते हैं, तो हमारी अपनी अनदेखी प्रार्थनाएँ श्रेष्ठतम संग में हैं। यह अध्याय एक सामान्य प्रवृत्ति को भी शान्ति से सुधारता है। जब संकट आता है, हम प्रायः वैसे ही करते हैं जैसे देवताओं ने पहले किया — हम विचार करते हैं, योजना बनाते हैं, अपनी बुद्धि से निकलने का प्रयास करते हैं। और प्रायः उनकी भाँति किसी वास्तविक उत्तर पर नहीं पहुँचते। मोड़ तभी आता है जब ब्रह्मा उनकी दृष्टि उनके अपने साधनों से ऊपर उस भगवान की ओर उठाते हैं जो सबके स्रोत हैं। वृक्ष और उसकी जड़ की शिक्षा इसे एक ही स्मरणीय चित्र में समेट देती है: हम अलग-अलग शाखाओं को सींचने में इतना श्रम लगाते हैं — यह चिन्ता, वह आवश्यकता, यह सम्बन्ध — जबकि हमारे जीवन का समस्त वृक्ष उसी क्षण एक साथ पुष्ट हो जाता है जब हम जड़ को सींचते हैं। भगवान से प्रेम और उनकी सेवा शेष सबकी उपेक्षा नहीं है; वह शेष सबकी सर्वाधिक निश्चित रूप से देखभाल है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज अपनी प्रार्थनाओं को दर्जनों अलग-अलग चिन्ताओं में बिखेरने के बजाय, जड़ पर एक ही प्रार्थना अर्पित करें। अपने सम्पूर्ण जीवन को — उसकी चिन्ताओं, उसके जनों, उसकी आवश्यकताओं को — एक साथ भगवान के समक्ष लाएँ, और उन सबको “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” के शब्दों से उन्हें सौंप दें। जड़ को सींचते हुए विश्वास रखें कि हर शाखा पुष्ट हो रही है, और हर पत्ती को स्वयं सँभालने का श्रम धीरे से छूट जाने दें।

उपसंहार

आठवें स्कन्ध का पंचम अध्याय क्षीरसागर-मन्थन की भव्य कथा के लिए मंच तैयार करता है। रैवत और चाक्षुष मन्वन्तरों तथा भगवान के अजित अवतार का वर्णन करने के बाद श्रीशुकदेव बताते हैं कि दुर्वासा के शाप और युद्ध की पराजय से टूटे देवताओं ने पहले सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की शरण ली और तत्पश्चात् उन्हीं के नेतृत्व में साक्षात् भगवान की। अन्धकार से परे तट पर हुई ब्रह्मा की स्तुति — वृक्ष की जड़ सींचने के अपने अमर दृष्टान्त सहित — सिखाती है कि भगवान की आराधना समस्त प्राणियों का पोषण है और उन्हें अर्पित कुछ भी कभी व्यर्थ नहीं जाता। स्रष्टा की प्रार्थना पूर्ण होने के साथ भगवान के प्राकट्य और देवताओं को दिए जाने वाले उनके परामर्श का मार्ग तैयार हो जाता है, जिसे अगला अध्याय प्रकट करेगा।

श्रीमद्भागवत का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), आठवाँ स्कन्ध, पंचम अध्याय, पृष्ठ 751–757।
- शृंखला: श्रीमद्भागवत विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।

- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुरूप प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बद्धता अथवा उसके अनुमोदन का संकेत नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-8-chapter-5-the-gods-appeal-to-the-lord-through-brahma-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

